श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

प्रणय गीत 10.29 श्लोक 31-41

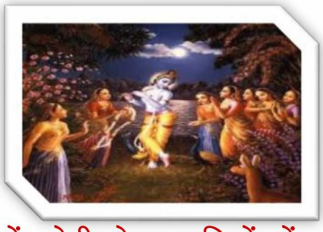

भक्तों मे ज्यों गोपी श्रेष्ठ, मुनियों में ज्यों व्यास।
पुराणों में ज्यों भागवतम्, लीला में महारास।।

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।

देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्

अन्तर्यामी नारायण स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, (उनके नित्य सखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीला प्रकट करनेवाली) भगवती सरस्वती और (उन लीलाओं का संकलन करनेवाले) महर्षि वेदव्यास को नमस्कार करके जय के साधन वेद-पुराणों का पाठ करना चाहिये।

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।

प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्

जिन भगवान के नामों का संकीर्तन सारे पापों को सर्वथा नष्ट कर देता है और जिन भगवान के चरणों में आत्मसमर्पण, उनके चरणों में प्रणति सर्वदा के लिए सब प्रकार के दुःखों को शांत कर देती है, उन्हीं परम -तत्वस्वरूप श्रीहरि को मैं नमस्कार करता हूं।

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

दशमः स्कंधः

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

गोप्य ऊचुः

मैवं(वँ) विभोऽर्हति भवान् गदितुं(न्) नृशं(म्)सं(म्),

सन्त्यज्य सर्वविषयां(म्)स्तव पादमूलम् ।

भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान्

देवो यथाऽऽदिपुरुषो भजते मुमुक्षून् ॥ 1॥

सन् + त्यज्य

गोपियोंने कहा- प्यारे श्रीकृष्ण तुम घट-घट व्यापी हो। हमारे हृदयकी बात जानते हो। तुम्हें इस प्रकार निष्ठुरताभरे वचन नहीं कहने चाहिये। हम सब कुछ छोड़कर केवल तुम्हारे चरणोंमें ही प्रेम करती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि तुम स्वतन्त्र और हठीले हो। तुमपर हमारा कोई वश नहीं है। फिर भी तुम अपनी ओरसे, जैसे आदिपुरुष भगवान् नारायण कृपा करके अपने मुमुक्षु भक्तोंसे प्रेम करते हैं, वैसे ही हमें स्वीकार कर लो। हमारा त्याग मत करो

यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरङ्ग

स्त्रीणां(म्) स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम् ।

अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे

प्रेष्ठो भवां(म्)स्तनुभृतां(ङ्) किल बन्धुरात्मा ॥ 2॥

यत्पत्+यपत्य+सुहृदा+मनुवृत्तिरङ्ग, अस्त्वे+ वमे+तदुपदे+शपदे, भवां(म्)स्+ तनुभृतां(ङ्)

प्यारे श्यामसुन्दर । तुम सब धर्मोका रहस्य जानते हो। तुम्हारा यह कहना कि 'अपने पति, पुत्र और भाई-बन्धुओंकी सेवा करना ही स्त्रियोंका स्वधर्म है अक्षरशः ठीक है। परन्तु इस उपदेशके अनुसार हमें तुम्हारी ही सेवा करनी चाहिये; क्योंकि तुम्हीं सब उपदेशोंके पद (चरम लक्ष्य) हो; साक्षात् भगवान् हो। तुम्हीं समस्त शरीरधारियोंके सुहृद् हो, आत्मा हो और परम प्रियतम हो ।

कुर्वन्ति हि त्वयि रतिं(ङ्) कुशलाः(स्) स्व आत्मन्

नित्यप्रिये पतिसुतादिभिरार्तिदैः(ख्) किम् ।

तन्नः(फ्) प्रसीद परमेश्वर मा स्म छिन्द्या

आशां(न्) भृतां(न्) त्वयि चिरादरविन्दनेत्र ॥ 3॥

पतिसुता+ दिभिरार्+ तिदैः(ख्),

आत्मज्ञानमे निपुण महापुरुष तुमसे ही प्रेम करते हैं; क्योंकि तुम नित्य प्रिय एवं अपने ही आत्मा हो। अनित्य एवं दुखद पति-पुत्रादिसे क्या प्रयोजन है ? परमेश्वर इसलिये हमपर प्रसन्न होओ। कृपा करो। कमलनयन ! चिरकालसे तुम्हारे प्रति पाली-पोसी आशा अभिलाषाकी लहलहाती लताका छेदन मत करो

चित्तं(म्) सुखेन भवतापहृतं(ङ्) गृहेषु

यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये ।

पादौ पदं(न्) न चलतस्तव पादमूलाद्-

यामः(ख्) कथं(वँ) व्रजमथो करवाम किं(वँ) वा ॥ 4॥

यन् + निर् + विशत्युत

मनमोहन ! अबतक हमारा चित्त घरके काम-धंधो लगता था। इसीसे हमारे हाथ भी उनमें रमे हुए थे। परन्तु तुमने हमारे देखते-देखते हमारा वह चित लूट लिया। इसमें तुम्हें कोई कठिनाई भी नहीं उठानी पड़ी, तुम तो सुखस्वरूप हो न ! परन्तु | अब तो हमारी गति-मति निराली ही हो गयी है। हमारे ये पैर तुम्हारे चरणकमलोंको

छोड़कर एक पग भी हटनेके लिये तैयार नहीं है, नहीं हट रहे हैं। फिर हम व्रजमें कैसे जाये ? और यदि वहाँ जाये भी तो करें क्या ?

सिञ्चाङ्ग नस्त्वदधरामृतपूरकेण

हासावलोककलगीतजहृच्छयाग्निम् ।

नो चेद् वयं(वँ) विरहजाग्न्युपयुक्तदेहा

ध्यानेन याम पदयोः(फ्) पदवीं(म्) सखे ते ॥ 5॥

नस् + त्वदधरा+मृतपू+ रकेण,

हासावलो+ककलगी+ तजहृच् + छयाग्निम्, विरहजाग् + न्युप+युक्तदेहा

प्राणवल्लभ । हमारे प्यारे सखा तुम्हारी मन्द मन्द मधुर मुस्कान, प्रेमभरी चितवन और मनोहर संगीतने हमारे हृदयमें तुम्हारे प्रेम और मिलनकी आग धधका दी है। उसे तुम अपने अधरोंकी रसधारासे बुझा दो। नहीं तो प्रियतम हम सच कहती है, तुम्हारी विरह व्यथाकी आगसे हम अपने-अपने शरीर जला देगी और ध्यानके द्वारा तुम्हारे चरणकमलोंको प्राप्त करेंगी

यर्ह्यम्बुजाक्ष तव पादतलं(म्) रमाया

दत्तक्षणं(ङ्) क्वचिदरण्यजनप्रियस्य ।

अस्प्राक्ष्म तत्प्रभृति नान्यसमक्षमङ्ग

स्थातुं(न्) त्वयाभिरमिता बत पारयामः ॥ 6॥

यर्+ ह्यम् + बुजाक्ष, क्वचिदरण् + यजनप्रियस्य, अस् + प्राक्ष्म, नान् + यसमक्ष+ मङ्ग

प्यारे कमलनयन ! तुम वनवासियोंके प्यारे हो और वे भी तुमसे बहुत प्रेम करते हैं। इससे प्रायः तुम उन्हींके पास रहते हो। यहाँतक कि तुम्हारे जिन चरणकमलोंकी सेवाका अवसर स्वयं लक्ष्मीजीको कभी-कभी ही मिलता है, उन्हीं चरणोंका स्पर्श हमें प्राप्त हुआ। जिस दिन यह सौभाग्य हमें मिला और तुमने हमें स्वीकार करके आनन्दित किया, उसी दिनसे हम और किसीके सामने एक क्षणके लिये भी ठहरनेमें असमर्थ हो गयी हैं- पति पुत्रादिकोंकी सेवा तो दूर रही

श्रीर्यत्पदाम्बुजरजश्चकमे तुलस्या

लब्ध्वापि वक्षसि पदं(ङ्) किल भृत्यजुष्टम् ।

यस्याः(स्) स्ववीक्षणकृतेऽन्यसुरप्रयासस्-

तद्वद् वयं(ञ्) च तव पादरजः(फ्) प्रपन्नाः ॥ 7॥

श्रीर्यत् + पदाम् + बुजरजश् + चकमे, स्ववी+ क्षणकृतेऽन् + यसुरप्रयासस्

हमारे स्वामी ! जिन लक्ष्मीजीका कृपाकटाक्ष प्राप्त करनेके लिये बड़े-बड़े देवता तपस्या करते रहते हैं, वही लक्ष्मीजी तुम्हारे वक्षःस्थलमें बिना किसीकी प्रतिद्वन्द्विताके स्थान प्राप्त कर लेनेपर भी अपनी सौत तुलसीके साथ तुम्हारे चरणोंकी रज पानेकी अभिलाषा किया करती हैं। अबतकके सभी भक्तोंने उस चरणरजका सेवन किया है। उन्होंके समान हम भी तुम्हारी उसी चरणरजकी शरण में आयी हैं

तन्नः(फ्) प्रसीद वृजिनार्दन तेऽङ्घ्रिमूलं(म्),

प्राप्ता विसृ*ज्य वसतीस्त्वदुपासनाशाः ।

त्वत्सु*न्दर*स्मितनिरीक्षणतीव्रकाम-

तप्ता*त्मनां(म्) पुरुषभूषण देहि दास्यम् ॥ 8॥

वसतीस्+ त्वदुपा+ सनाशाः, त्वत्+ सुन्दरस्+ मितनिरी+ क्षणतीव्र+ काम

भगवन्! अबतक जिसने भी तुम्हारे चरणोंकी शरण ली, उसके सारे कष्ट तुमने मिटा दिये। अब तुम हमपर कृपा करो। हमें भी अपने प्रसादका भाजन बनाओ। हम तुम्हारी सेवा करनेकी आशा-अभिलाषासे घर, गाँव, कुटुम्ब - सब कुछ छोड़कर तुम्हारे युगल चरणोंकी शरणमें आयी हैं। प्रियतम वहाँ तो तुम्हारी आराधनाके लिये अवकाश ही नहीं है। पुरुषभूषण! पुरुषोत्तम! तुम्हारी मधुर मुसकान और चारु चितवनने हमारे हृदयमें प्रेमकी मिलनकी आकाङ्क्षाकी आग धधका दी है; हमारा रोम-रोम उससे जल रहा है। तुम हमें अपनी दासीके रूपमें स्वीकार कर लो। हमें अपनी सेवाका अवसर दो

वीक्ष्यालकावृतमुखं(न्) तव कु*ण्डल*श्री-

ग*ण्ड*स्थलाधरसुधं(म्) हसितावलोकम् ।

दत्ताभयं(ञ्) च भुजदं*ण्डयुगं(वँ) विलोक्य,

व*क्षः(श्)श्रियैकरमणं(ञ्) च भवाम दास्यः ॥ 9॥

वीक्ष्या+ लका+ वृतमुखं(न्), गण्डस्+ थला+ धरसुधं(म्), वक्षः(श्)+ श्रियै+ करमणं(ञ्)

प्रियतम ! तुम्हारा सुन्दर मुखकमल, जिसपर घुँघराली अलके झलक रही हैं; तुम्हारे ये कमनीय कपोल, जिनपर सुन्दर-सुन्दर कुण्डल अपना अनन्त सौन्दर्यबिखेर रहे हैं; तुम्हारे ये मधुर अधर, जिनकी सुधा सुधाको भी जानेवाली है, तुम्हारी यह नयनमनोहारी चितवन, जो मन्द मन्द मुसकानसे उल्लसित हो रही है; तुम्हारी ये दोनों भुजाएँ, जो शरणागतोंको अभयदान देनेमें अत्यन्त उदार हैं और तुम्हारा यह वक्षःस्थल, जो लक्ष्मीजीका सौन्दर्यकी एकमात्र देवीका नित्य क्रीडास्थल है, देखकर हम सब तुम्हारी दासी हो गयी है

का स्त्र्यङ्ग* ते कलपदायतमूर्च्छितेन,

सम्मोहिताऽऽर्यचरितान्न चलेत्त्रिलोक्याम् ।

त्रैलोक्यसौभगमिदं(ञ्) च निरीक्ष्य रूपं(यँ),

यद् गोद्विज*द्रुममृगाः(फ्) पुलकान्यबि*भ्रन् ॥ 10॥

कलपदा+ यतमूर्च् + छितेन ,सम्मोहिताऽऽर्+ यचरितान्+ न ,त्रैलोक्यसौ+ भगमिदं(ञ्)

गोद्विज+ द्रुम+ मृगाः(फ्) ,पुलकान्+ यबिभ्रन्

प्यारे श्यामसुन्दर ! तीनों लोकोंमें भी और ऐसी कौन-सी स्त्री है, जो मधुर-मधुर पद और आरोह-अवरोह-क्रमसे विविध प्रकारकी मूर्च्छनाओंसे युक्त तुम्हारी वंशीकी तान सुनकर तथा इस त्रिलोकसुन्दर मोहिनी मूर्तिको जो अपने एक बूँद सैन्दर्य त्रिलोकीको सौन्दर्यका दान करती है एवं जिसे देखकर गौ, पक्षी, वृक्ष और हरिन भी रोमाशित, पुलकित हो जाते हैं— अपने नेत्रोंसे निहारकर आर्य-मर्यादासे विचलित न हो जाय, कुल-कान और लोकलजाको त्यागकर तुममें अनुरक्त न हो जाय

व्यक्तं(म्) भवान् व्रजभयार्तिहरोऽभिजातो,

देवो यथाऽऽदिपुरुषः(स्) सुरलोकगोप्ता ।

तन्नो निधेहि करपं(ङ्)कजमार्तबन्धो,

तप्तस्तनेषु च शिरस्सु च किं(ङ्)करीणाम् ॥ 11॥

व्रजभयार्+ तिहरोऽ+ भिजातो ,करपं(ङ्)कज+ मार्तबन्धो

हमसे यह बात छिपी नहीं है कि जैसे भगवान् नारायण देवताओंकी रक्षा करते हैं, वैसे ही तुम व्रजमण्डलका भय और दुःख मिटानेके लिये ही प्रकट हुए हो और यह भी स्पष्ट ही है कि दीन-दुखियोंपर तुम्हारा बड़ा प्रेम, बड़ी कृपा है। प्रियतम! हम भी बड़ी दुःखिनी हैं। तुम्हारे मिलनकी आकांक्षाकी आगसे हमारा वक्षःस्थल जल रहा है। तुम अपनी इन दासियोंके वक्षःस्थल और सिरपर अपने कोमल करकमल रखकर इन्हें अपना लो; हमें जीवनदान दो

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्) सं(म्)हितायां(न्)

दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भगवतो रासक्रीडावर्णनं(न्) नामैकोनत्रिं(म्)शोऽध्यायः ॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

ॐ शान्तिः(श्)शान्तिः(श्)शान्तिः।।

वह सच्चिदानंदघन परब्रह्म सभी प्रकार से सदा सर्वदा परिपूर्ण है। यह जगत भी उस परमात्मा से पूर्ण ही है, क्योंकि यह पूर्ण उस पूर्ण पुरुषोत्तम से ही उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार परब्रह्म की पूर्णता से जगत पूर्ण होने पर भी वह परब्रह्म परिपूर्ण है। उस पूर्ण में से पूर्ण को निकाल देने पर भी वह पूर्ण ही शेष रहता है।